।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

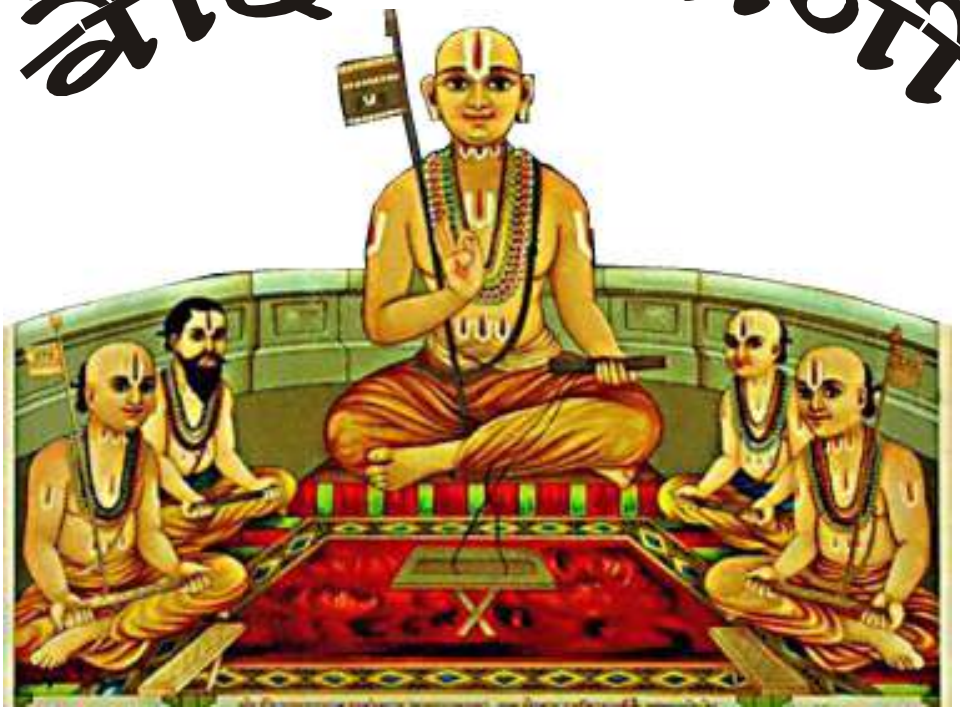

वर्ष- २३ अगस्त सन्- २०१० ई०	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अंक- ३ रामानुजाब्द त्रैमासिक प्रकाशन

चकर्थ यस्या भवनं भुजान्तरं तव प्रियं धाम यदीयजन्मभूः ।
जगत्समस्तं यदपाङ्गसंश्रयं यदर्थमम्भोधिरमन्थ्यबन्धि च ।।

आपका वक्षस्थल जिनका भवन है, जिनकी जन्मभूमि क्षीरसागर आपका प्रिय आवास है, जिनकी कटाक्ष का आश्रय लेकर समग्र जगत् स्थित है, जिन्हें प्राप्त करके समुद्र का मन्थन तथा बन्धन किया गया था।

कौशिक ने समझा धर्म का मर्म

कौशिक नामक एक ब्राह्मण थे। वे अङ्गों सहित सम्पूर्ण वेदशास्त्र एवं उपनिषदों के ज्ञाता थे। स्वाध्याय तथा वे तपस्या में निरन्तर लगे रहते थे। एक दिन एक वृक्ष के नीचे वे वेद पाठ कर रहे थे। उस वृक्ष के ऊपर एक बगुली बैठी हुई थी। उसने ऊपर से बिष्टा कर दी। वेद-पाठ में संलग्न कौशिक के ऊपर बिष्टा गिर पड़ी, जिससे क्रोधित होकर बगुली को कड़ी दृष्टि से उन्होंने देखा। उनकी दृष्टि के प्रभाव से बगुली वृक्ष से गिरकर मर गयी। कौशिक ने मृत बगुली को देखकर बड़ा पश्चात्ताप किया। इसके बाद कौशिक किसी गाँव में एक ब्राह्मण के घर भिक्षा के लिये गये। उस समय ब्राह्मण कहीं बाहर गये थे और ब्राह्मणी बर्तन साफ रही थी। तपस्वी कौशिक ने बाहर से भिक्षा माँगी। ब्राह्मणी भिक्षा का अन्न लेकर ब्राह्मण को देने के लिए तैयार होती है कि उसका पति घर आ गया। वह स्नान नहीं किया था तथा भूख-प्यास से पीड़ित था। ब्राह्मणी पतिव्रता थी। पतिव्रता उस नारी को कहते हैं, जो पति की आज्ञा का कभी उल्लङ्घन नहीं करती हुई पति की सेवा में सदा लगी रहती है। प्रतिव्रता नारी का जो भी काम होता है पति की प्रसन्नता के लिए होता है। पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से उसमें एक ऐसी विलक्षण शक्ति आ जाती है जैसी शक्ति समाधिस्थ होकर ब्रह्मचिन्तन करने वाले योगियों में होती है। वह पतिव्रता ब्राह्मणी भिक्षा का अन्न आँगन में ही रखकर पति की सेवा में लग गयी। पति को स्नान, भोजन आदि कराने के बाद भिक्षा का अन्न लेकर ब्राह्मणी द्वार पर कौशिक के पास आयी। महात्मा कौशिक ने कहा—ब्राह्मणि! मैं तुम्हारे द्वार पर बहुत देर से खड़ा हूँ तुमने मेरी उपेक्षा की यह उचित नहीं है। एक भिक्षुक ब्राह्मण तुम्हारे द्वार पर भिक्षा की आशा में बैठा रहे और तुम उसे देखकर भी घर के कार्य में लगी रह जाओ यह धर्म तथा संस्कृति के विरुद्ध है। हमारा धर्मशास्त्र कहता है कि ***'अतिथि देवो भव'*** कोई भी अतिथि द्वार पर आ जाय तो सभी कर्मों को छोड़कर सर्वप्रथम उसकी सेवा करनी चाहिए; क्योंकि अतिथि देवतुल्य पूज्य होते हैं। यह सुनकर ब्राह्मणी ने कहा कि महात्मन्! मेरा अपराध क्षमा करेंगे। मैं भिक्षा देने आ रही थी, उसी समय मेरे पति घर पर आ गये, वे भूख-प्यास से पीड़ित थे। स्त्री का धर्म पति को सुख देना है। अत: उनके स्नान, भोजन आदि सेवा में मैं लग गयी थी, इसलिये आपको भिक्षा देने में बिलम्ब हुआ। ब्राह्मणी की क्षमा-याचना पर भी महात्मा कौशिक क्रोध से जलने लगे। क्रोधावेश में बोलने लगे—हे ब्राह्मणि! तुम तपस्वी वेदज्ञ ब्राह्मण के प्रभाव को नहीं जानती हो, वे आग के समान होते हैं। उनका क्रोध समस्त पृथ्वी को भी जला सकता है। महात्मा कौशिक के क्रोधावेश से युक्त वचन को सुनकर पतिव्रता ब्राह्मणी बोली—मैं पक्षी नहीं हूँ, जिसे आप भस्म कर देंगे। मैं एक पतिव्रता स्त्री हूँ। आपका क्रोध मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। फिर भी मैं आपका अनादर न करके आप से क्षमा ही माँग रही हूँ। धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म होती है। धर्म का सही स्वरूप जनकपुर का एक धर्मव्याध जानता है। वह माता-पिता का सेवक, सत्यवादी और जितेन्द्रिय है। आप उसके पास जाकर धर्म के तत्त्व को समझें।

पतिव्रता के इस अपूर्व चमत्कार से महात्मा कौशिक आश्चर्यचकित होकर विचार करने लगे कि एकान्त में एक वृक्ष के पास बगुली के मरने की

अपने घर से निकल आये हैं यह उचित नहीं है। आपका कोई भी धर्म-कर्म उनको सन्तुष्ट किये बिना सफल नहीं हो सकता है। अत: शीघ्र ही अपने माता-पिता के पास जाकर उन्हें सन्तुष्ट करें। कौशिक ने कहा कि धर्मव्याध तुम्हारे उपदेश से मेरे ज्ञाननेत्र खुल गये। अब मैं उपदेश के अनुसार कर्त्तव्य-कर्म का निरन्तर पालन करूँगा।

इस कथा से नारीवर्ग तथा पुरुषवर्ग दोनों को शिक्षा मिलती है। पतिव्रता स्त्री ब्राह्मणी से पातिव्रत्य धर्म की शिक्षा नारियों को लेनी चाहिए। आज भी नारियाँ प्राय: शिक्षित होती हैं; परन्तु आचरण में पूर्ण अशिक्षित। अपने परिवार पर शासन करने की भावना सबों में भरी हुई है। पुरुषवर्ग को धर्मव्याध से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए जो अपने शुद्ध आचरणपूर्वक जातीय कर्म का पालन करता रहा, जिससे उसे एक दिव्य शक्ति प्राप्त हुई। वह तपस्वी ब्राह्मण को सन्मार्ग पर लाकर स्वयं भी कल्याण का भाजन बना।

अत एव भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के १८वें अध्याय में चारों वर्णों के कर्म को बतलाकर अपने-अपने कर्मों का पालन ही ईश्वर की उपासना है और उसी से सबों का कल्याण होता है ऐसा कहा है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

ooo

जीवों पर भगवान् की निर्हेतुकी कृपा

भगवान के कृपा एक अमूल्य वस्तु है जीव का स्वाभाव अपराध करते रहना है ऐसे अपराधी जीव के किसी एक गुण को समझकर भगवान् उस पर कृपा कर देते हैं जिसे निर्हेतु कृपा कहते हैं। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

१- एक व्यक्ति विषयासक्त था, वह वैश्या के सङ्ग से कभी हटना नहीं चाहता था। वेश्या भगवान के मन्दिर में गान-नृत्य आदि से सेवा करती थी। भगवान के मन्दिर में प्रेम नहीं रहने पर भी विषयासक्त व्यक्ति वेश्या को देखने के लिए मन्दिर में बार-बार जाता था, उसे अनिछया भी भगवान के दर्शन हो जाते थे। मन्दिर जाना और भगवान का दर्शन करना सत्कर्म है, परन्तु विषयासक्त व्यक्ति दर्शन के कामना से मन्दिर में न जाकर वैश्या के दर्शन के लिए ही जाया करता था। उस समय विषयासक्त व्यक्ति के भगवान का दर्शन हो जाने से भगवान ने उसके दोषों पर ध्यान न देकर अनिछया अपने दर्शन को निमित्त बनाकर भगवान ने उसे कल्याण कर दिया।

२- एक व्यापारी ने अपने काम के लिए अनेक नौकरों को नियुक्त किया। उनमें किसी का नाम नारायण किसी का नाम गोविन्द और किसी का नाम केशव था। नौकरों को बुलाने की कामना से व्यापारी बार-बार पुकारते समय हे केशव! हे गोविन्द! हे नारायण! नाम उच्चारण करता रहता था। उस व्यापारी में भगवत् नाम उच्चारण की भावना नहीं थी। केवल नौकर को पुकारने के लिए भगवान का नाम लेता था। उस व्यापारी के मरने पर नौकर के नाम लेने के निमित्त भगवत् नाम उच्चारण करने के कारण भगवान ने उसे मुक्त कर दिया।

अत: भगवान निर्हेतु कृपाकर जीवों का उद्धार करते रहते हैं।

****

विभिन्न प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण को देखा। उनमें कहीं यज्ञ कुण्डों में हवन करते हुए, कहीं पञ्चमहायज्ञों से आराधना करते हुए, कहीं सन्ध्या करते हुए, कहीं मन्त्र जपते हुए उन्हें देखा। इस तरह भगवान् गृहस्थों को पवित्र करने वाले श्रेष्ठ धर्मों का आचरण कर रहे थे—

इत्याचरन्तं सद्धर्मान् पावमान् गृहमेधिनाम्।
तमेव सर्वगेहेषु सन्तमेकं ददर्शह।।

धार्मिक कर्मों को करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण को देखकर नारदजी को यह शङ्का हो गयी कि जो स्वर्ग, नरक, वैकुण्ठ आदि लोकों को देने वाले तथा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं वे धार्मिक अनुष्ठान क्यों कर रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण नारदजी की आन्तरिक भावना समझ गये। उन्होंने नारदजी से कहा कि संसार को धर्म की शिक्षा देने के लिए मैं इस प्रकार धर्म का आचरण करता हूँ। इसलिए हे नारद! तुम इस तरह देखकर मोहित मत होना।

यह प्रसङ्ग गृहस्थों के लिए विशेष शिक्षाप्रद है। जब गृहस्थों को गीता की बात कहकर सन्ध्या-वन्दन आदि कर्म करने के लिए उपदेश दिया जाता है, तब ज्ञानाभाव के कारण बहुत से लोग कह देते हैं कि हमलोग गृहस्थ हैं, हमलोगों को छुट्टी कहाँ है कि पूजा-पाठ करें; परन्तु उन्हें विचार करना है कि विशेष धर्मों के आचरण गृहस्थों के लिए ही कहे गये हैं। इसीलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने गृहस्थ होकर ही पूर्वोक्त धर्मों का पालन लोकशिक्षार्थ किया है। जो सच्चे त्यागी, साधु, संन्यासी हैं, उन्हें तो शुभाशुभ कर्म का फल मिलता ही नहीं। इसलिए गीता १८वें अध्याय के १२वें श्लोक से कहा है कि इष्ट, अनिष्ट और मिश्र–इस प्रकार के कर्मफल संसारियों को मिलते हैं, त्यागियों को नहीं।

ooo

धर्मरथ चल पड़ा अब कहीं रूके नहीं

पुकारता तुम्हें गगन धरा तुम्हें पुकारती।
खड़ा रथ निहारता कहाँ गया सारथी।।

स्वदेश नष्ट हो रहा विवेक भ्रष्ट हो रहा,
आज राष्ट्र भक्ति का स्वरूप नष्ट हो रहा।
साधना मिटे नहीं मिटे नहीं साधकी,
पुकारता तुम्हें गगन धरा तुम्हें पुकारती।।

भेदभाव बढ़ रहा लोग में समाज में,
द्वेष भी पनपता नगर गाँव-गाँव में।
मन्द गति हो गई स्वधर्म स्वाभिमान की,
पुकारता तुम्हें गगन धरा तुम्हें पुकारती।।

मिट गई शान्ति है बढ़ रही भ्रान्ति है,
लूट पाट मच गई फैल रही अशान्ति है।
धज्जियाँ उड़ रही प्रशासन के नाम की,
पुकारता तुम्हें गगन धरा तुम्हें पुकारती।।

उठो पुनःशक्ति के, पथ रोक दो विपत्ति के,
देशभक्ति का दीया फिर कभी बुझे नहीं।
धर्मरथ चल पड़ा अब कहीं रूके नहीं,
पुकारता तुम्हें गगन धरा तुम्हें पुकारती।।

****

नाम-महिमा

रामनामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ।।

भगवान् के चार विग्रह हैं–नाम, रूप, लीला और धाम। उनमें नाम प्रथम है। नाम से नामी का बोध होता है। नाम के बिना नामी का ज्ञान नहीं होता है। सब भक्तों ने नाम जपकर ही भगवान् के स्वरूप का साक्षात्कार किया है। ध्रुव ने नारद के द्वारा प्राप्त नाम मन्त्र जपकर छः मास में भगवान् विष्णु का दर्शन कर लिया था। नाम-नामी में तादात्म्य सम्बन्ध है। सभी युगों में नाम की महिमा रही है; परन्तु कलियुग में कल्याण के लिए एक मात्र भगवान् के नाम का सङ्कीर्तन ही उपाय है—

चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ ।
कलि विशेष नहिं आन उपाऊ ।।

किसी भी व्यक्ति को किसी प्रकार का कष्ट होता है तो उसके पाप से। बिना पाप का दुःख नहीं और बिना पुण्य का सुख नहीं। अनादि काल से जीव मोहवश गलत काम करते आ रहा है। वह पापमय-कर्म दुःख से सम्बन्ध बना देता है।

'धर्मेण पापमपनुदति' इस वचन के अनुसार धर्म से पाप नष्ट होता है। कृच्छ्र, चान्द्रायण, प्राजापत्यव्रत, तपस्या, दान, जप आदि अनेक प्रकार के धर्म पाप को नष्ट करने के लिए बताये गये हैं; परन्तु उन धर्मों से हृदय पूर्ण शुद्ध नहीं होता है, जबतक मनुष्य भगवान् के नामों का सङ्कीर्तन नहीं करता है—

न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभि-
स्तथा विशुद्ध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ।
यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतै-
स्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ।।

(भा० ६।२।११)

श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि सङ्केत में, परिहास में, तान अलापने में अथवा किसी की अवहेलना करने में भी यदि कोई भगवान् का नाम उच्चारण करता है तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य गिरते समय, साँप के डँसते समय, आग में जलते समय अथवा चोट लगते समय भी विवश होकर ***'हरि' 'हरि'*** ऐसा भगवान् का नाम उच्चारण करता है तो वह यमलोक नहीं जाता। जैसे अनजान में या अनिच्छया अग्नि का स्पर्श होने पर वह जला ही देती है। वैसे ही दूषित प्रवृत्ति का व्यक्ति द्वारा भी भगवान् श्रीहरि का नामोच्चारण करने पर उसका पाप नष्ट हो जाता है। अमृत के गुण न जानने पर भी मुख में चले जाने पर वह अमर बना ही देता है। वैसे ही मुख में भगवान् का नाम चले जाने पर कल्याण कर देता है। अतः जिसकी जिह्वा पर ***'हरि'*** ये दो अक्षर बसते हैं उसे गङ्गा, गया, सेतुबन्ध, काशी और पुष्कर की कोई आवश्यकता नहीं; अर्थात् उनकी यात्रा, स्नान आदि का फल भगवन्नाम से ही मिल जाता है। जिसने हरि इन दो अक्षरों का उच्चारण कर लिया, उसने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का अध्ययन कर लिया। जिसने हरि ये दो अक्षर उच्चारण किये उसने दक्षिणा के सहित अश्वमेघ आदि यज्ञों के द्वारा यजन कर लिया। हरि ये दो अक्षर मृत्यु के पश्चात् परलोक के मार्ग में प्रयाण करने वाले प्राणों के लिये पाथेय (मार्ग के लिए भोजन की सामग्री) है। संसाररूप रोग के लिए सिद्ध औषध है और जीवन के दुःख और क्लेशों के लिए परित्राण है।

भगवान् के नाम का सङ्कीर्तन करने में न देश का नियम है और न तो काल का। इसमें कोई सन्देह नहीं। यज्ञ, दान, तीर्थ, स्नान अथवा

मानस में गुरु-भक्तियोग

शास्त्रकारों ने परमात्मा को प्राप्त करने का अनेक उपाय बतलाया है–कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्ति-योग, प्रपतियोग और आचार्याभिमानयोग। यह सारे कर्म प्रभु तक पहुँचाने का ही उपाय हैं। लेकिन यह बड़ा ही दुरूह्य है। इसलिए हमारे पूर्वाचार्यों ने 'आचार्याभिमान' को ही सरल उपाय बतलाया है। आचार्याभिमान का अभिप्राय है अपने आचार्य पर पूर्ण भरोसा एवं विश्वास।

गुरु जीव को अन्धकार से प्रकाश और असत्य से सत्य की ओर ले जाता है। भगवान् के सम्मुख करके जीव की तरफ से वकालत करता है—

एनं रक्षस्व गोविन्द बहुजन्म अपराधिनम्।

हे प्रभु! जन्म-जन्मान्तर के अपराधी जीव आज आपके शरण में आया है इसकी रक्षा करने की आप कृपा करें। इतना उपकार विश्व में गुरु को छोड़कर और कौन कर सकता है? जिस समय गुरु के माध्यम से जीव भगवान् की शरणागति करता है। उस समय करोड़ों जन्मों का पाप नष्ट हो जाता है। इसलिए भगवान् ने स्वयं स्वीकार किया—

सन्मुख होई जीव मोही जवही।
जन्म कोटि अघ नासही तबही।।

जब जीव समर्थ गुरु के पास जाता है तब सांसारिक चिन्ता दूर हटने लगती है। अशान्त और उद्विग्नमन को शान्ति मिलने लगती है और आत्म-विचार भी लहरे मारने लगती है।

सच्चा गुरु ही परमात्मा तक जीव को पहुँचाता है। सबरी को मतङ्ग जैसे ऋषि ने स्वीकार कर लिया। वह नीच कुल में जन्म लिया था, कुरूप थी, अपङ्ग थी, लेकिन गुरु के शरण में जाते ही वह पवित्र हो गयी—

सोई पावन सोई सुभग शरीरा।
जेहि तन पाई भजिय रघुवीरा।।

शबरी की भक्ति गुरुकृपा से बढ़ती गई। उसे अपने गुरु के वचन पर विश्वास था। जिस समय मतङ्ग परलोक जाने लगे उस समय शबरी को असह्य कष्ट हुआ; क्योंकि वह गुरु को ईश्वर से भी ज्यादा निष्ठा से पूजा करती थी—

गुरु मूरति मुख चन्द्रमा सेवक नयन चकोर।
अष्ट प्रहर निरखत रहै गुरु चरनन की ओर।।

मतङ्ग ने जाते वक्त कहा कि बेटी चिन्ता मत करो, भगवान् राम तुम्हारे पास आकर दर्शन देंगे। भगवान् श्रीराम ने स्वयं पैदल चलकर शबरी के आश्रम पर पधारे और उसे सही पात्र समझकर नवधा भक्ति का उपदेश किया। समर्थ गुरु ईश्वरीय कोप से शिष्य की सदैव रक्षा करता है—

राखई गुरु जो कोप विधाता।
गुरु विरोध नहीं कोउ परित्राता।।

उज्जैन महाकाल मन्दिर में काकर्षि शिव मन्त्र का जप कर रहे थे। गुरु आते हैं, लेकिन शिष्य जप खण्डित न हो इसलिए गुरु को प्रणाम नहीं किया। गुरु इस अपमान से आहत नहीं हुए, लेकिन शिव ने श्राप देना प्रारम्भ कर दिया। भारत का सच्चा गुरु शिव की लम्बी स्तुति कर प्रसन्न करते हैं और वरदान माँगते हैं कि मेरे शिष्य को आप आशीर्वाद देकर नरक जाने से उसकी रक्षा करें। शिव ने प्रसन्न हो काकर्षी को शाप नहीं दिया स्वयं काकर्षि ने स्वीकार किया—

एक शूल मोहि बिसर न काऊ।
गुरुकर कोमल शील स्वभाऊ।।

भगवान् का चरणामृत तीन बार लेने का विधान है और गुरु का दो बार। गुरु गीता में आया है—

सप्त सागरपर्यन्तं तीर्थस्नानफलं तु यत्।
गुरुपादपयोविन्दोः सहस्त्रांशेन तत्फलम्।।

पुरी में श्रीकृष्ण और बलदेव जी के बीच सुभद्रा को रहने का रहस्य

निलाद्रौ शङ्खमध्ये शतदल कमले रत्नसिंहासनस्थं
सर्वालङ्कारयुक्तं नवघनरूचिरं संयुतं चाग्रजेन ।
भद्रायावामभागे रथचरणयुतं ब्रह्मरूद्रेन्द्रवंद्यं
वेदानां सारमीशं सुजनपरिवृतं ब्रह्मदारूँ स्मरामि ।।

द्वापर युग में एक बार द्वारका में श्रीकृष्ण की पटरानियों ने माता रोहिणी से कृष्ण की व्रजलीला एवं गोपियों के प्रेम-प्रसङ्ग को सुनाने का आग्रह किया। पहले तो माता रोहिणी ने टालने का बहुत प्रयास किया लेकिन पटरानियों के बहुत आग्रह करने पर उन्हें सुनाना ही पड़ा। सुभद्रा जी की उपस्थिति वहाँ उचित न जानकर माता रोहिणी ने उन्हें द्वार के बाहर खड़े रहने को कहा और यह भी आदेश दिया कि वे किसी को उस वक्त भीतर न आने दें। उन्होंने गोपियों के प्रेम-प्रसङ्ग वाली कथा शुरु की। ठीक उसी समय श्रीकृष्ण और बड़े भाई बलराम वहाँ पधारे। सुभद्राजी दोनों भाइयों के बीच में खड़ी होकर माता रोहिणी के आदेशानुसार उन्हें भीतर जाने से रोका। उसी समय देवर्षि नारद आ गए। देवर्षि ने जो यह प्रेम द्रवित रूप तीनों को देखा तो श्रीकृष्ण से प्रार्थना की कि आप तीनों इसी रूप में विराजमान हों। श्रीकृष्ण ने महर्षि नारद की प्रार्थना स्वीकार की और कहा कि कलियुग में दारू विग्रह में इसी रूप में हम तीनों स्थित होंगे और ऐसा ही हुआ भी। तब से प्रभु जगन्नाथ दारू विग्रह रूप में विद्यमान होकर भक्तों के मनोरथ को पूर्ण कर रहे हैं।

पद्मपुराण के अनुसार आषाढ़ महीने के शुक्ल पक्ष द्वितीया तिथि को भगवान् जगन्नाथ की पावन रथयात्रा प्रारम्भ होती है। रथयात्रा के दिन देव प्रतिमाओं (श्रीजगन्नाथजी, बलभद्रजी और सुभद्राजी) को रथ पर विराजमान कराने के लिए विशेष गाजे-बाजे के साथ लाया जाता है। यह दृश्य अत्यन्त ही मनोरम होता है। ऐसा लगता है कि जैसे देव-प्रतिमाएँ स्वयं चलकर आ रहीं हो। देव-प्रतिमाओं के रथ पर विराजमन होने के बाद पुरी के गणपति महाराजा पारंपरिक रीति से पालकी में बैठकर पधारते हैं और रथ पर चढ़कर एक सोने की झाड़ू से रथ की सफाई करते हैं। तत्पश्चात् राजा भगवान् का पूजन करते हैं और रथ को खींचकर आगे बढ़ाया जाता है। रथ सिंहद्वार से चलकर गुण्डिचा मन्दिर तक (जो तीन कि०मी० की दूरी पर स्थित है) पहुँचता है। इस दूरी को पार करने में २४ घण्टे से भी अधिक समय लगता है। गुण्डिचा मन्दिर में भगवान् ७ दिन निवास करते हैं। दशमी तिथि को वापसी यात्रा होती है, जिसे उड़िया भाषा में बाहूड़ा कहते हैं। रथयात्रा महोत्सव एक ऐसा अनुपम पर्व है, जिसे विश्वभर के लोग जाति-पंथ, भाषा-धर्म भेद को भूलकर भगवान् श्रीदारूब्रह्म जगन्नाथ के दर्शन करते हैं। जगन्नाथ मन्दिर में किसी भी प्रकार की छुआछूत की भावना लेशमात्र भी नहीं है। ब्राह्मण भी भगवान् श्रीजगन्नाथ का महाप्रसाद चाण्डाल के हाथ से ग्रहण करते हैं। लेकिन विदेशी एवम् अन्य धर्म के भक्तों को दर्शन का सुअवसर रथयात्रा में ही प्राप्त होता है। लाखों भक्त एवं पर्यटक प्रत्येक वर्ष रथयात्रा में पुरी आकर आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति करते हैं। साथ-ही-साथ मानव जीवन को धन्य बनाते हैं।

०००

से भिन्न, आकाश से भिन्न संग रहित, रस रहित, गन्ध रहित, चक्षु रहित, श्रोत्र रहित, वाणी रहित, मन रहित, तेज रहित, प्राण रहित, मुख रहित, परिणाम रहित, छिद्र रहित और देश, काल, वस्तु आदि परिच्छेद से रहित सर्वव्यापी एवम् अपरिच्छिन्न है। इस प्रकार वह कुछ भी खाता नहीं और उसे भी कोई खाता नहीं, इस प्रकार वह विशेषणों से रहित एक ही अद्वितीय है।

इस प्रकार समस्त विशेषणों का ब्रह्म में निषेध करके अब उसका नियन्तापन बतलाते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं—हे गार्गि! इस प्रसिद्ध अक्षर की आज्ञा से ही स्वर्ग और पृथिवी हाथ में रखे हुए पाषाण की तरह मर्यादा में रहते हैं। इस प्रसिद्ध अक्षर की आज्ञा में रहकर ही निमेष, मुहूर्त्त, दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु और संवत्सर इस काल के अवयवों की गणना करने वाले सेवक की तरह निमित रूप से आते-जाते हैं। इस प्रसिद्ध अक्षर के शासन में रहकर ही पूर्ववाहिनी गङ्गा आदि नदियाँ श्वेत हिमालय आदि पहाड़ों से निकलकर समुद्र की ओर बहती हैं तथा पश्चिमवाहिनी सिन्धु आदि और अन्यान्य दिशाओं की ओर बहती हुयी दूसरी नदियाँ इसी अक्षर के नियन्त्रण में बहती हैं। इस प्रसिद्ध अक्षर की आज्ञा से मनुष्य दाताओं की प्रशंसा करते हैं और इन्द्रादि देवगण यजमान और पितृगण दर्वी के अनुगत हैं अर्थात् देवता यजमान द्वारा किये हुए यज्ञ से ओर पितृगण उनके किये जाने वाले होम में घी डालने की चमची से यानी उस होम से पुष्ट होते हैं।

हे गार्गि! इस अक्षर को बिना जाने यदि कोई पुरुष इस लोक में हजारों वर्षों तक देवताओं को उद्देश्य करके यज्ञ करता है, व्रतादि तप करता है तो उसकर्म का फल अन्त वाला होता है, अर्थात् फल देकर वह कर्म नष्ट हो जाता है—वह अक्षय परमकल्याण को प्राप्त नहीं होता।

जो पुरुष इस अक्षर को नहीं जानकर (भगवत् प्राप्ति होने से पूर्व ही) इस लोक से मृत्यु को प्राप्त करता है, वह बेचारा कृपण (दीन, दया योग्य) है और जो इस अक्षर को जानकर इसमें मृत्यु को प्राप्त हेता है वह ब्राह्मण (ब्रह्मविद्) मुक्त होता है।

अन्त में याज्ञवल्क्य ब्रह्म का उपाधिरहित स्वरूप बतलाते हुए कहते हैं—हे गार्गि! यह प्रसिद्ध अक्षर किसी को नहीं दीखता, पर यह सबको देखता है। इसकी आवाज कानों से कोई नहीं सुन सकता; परन्तु यह सबकी आवाज सुनता है। यह किसी की धारणा में नहीं आता: परन्तु यही सबका मन्ता है। कोई इसे बुद्धि से नहीं जान सकता; परन्तु यही सबका विज्ञाता है। इससे भिन्न द्रष्टा नहीं है। इससे भिन्न श्रोता नहीं है। इससे भिन्न कोई मन्ता नहीं है और इससे भिन्न कोई विज्ञाता नहीं है। अत: हे गार्गि! अविनाशी ब्रह्म में ओत-प्रोत है।

महर्षि याज्ञवल्क्य के इस विलक्षण व्याख्यान को सुनकर गार्गी सन्तुष्ट हो गयी और प्रमुदित होकर ब्राह्मणों से कहने लगी—हे ब्राह्मणो! याज्ञवल्क्य को नमस्कार करो। ब्रह्म सम्बन्धी विवाद में इनको कोई भी नहीं हरा सकता। इनकी पराजय मन की कल्पना में भी नहीं आ सकती। इतना कहकर गार्गी चुप हो गयी।

याज्ञवल्क्य के ज्ञान और तेज को देखकर सारी सभा चकित हो गयी। तदनन्तर याज्ञवल्क्य ने कहा कि और कुछ पूछना हो, तो पूछो; परन्तु किसी ने कुछ भी नहीं पूछा। चारो ओर याज्ञवल्क्य की जय ध्वनि होने लगी। विज्ञानानन्द से याज्ञवल्क्य और गार्गी का चेहना चमक रहा था।

इसी ब्रह्म को यथार्थरूप से जानने की इच्छा करना और अन्त में जान लेना मनुष्य-जन्म की सफलता का एकमात्र प्रमाण है।

ooo

का जल प्यास नहीं बूझा सकती है। प्यास लगने पर मनुष्य चाहे कि भूमि के अन्दर के जल को खोदकर निकाल ले यह सम्भव नहीं है। तब तक प्यासा पुरुष मर ही जायेगा, अत एव कहा गया— ***'भूगतजलवदन्तर्यामित्वम्'।***

५. प्यासे हुए पुरुषों के लिए तालाब का जल सुलभ होता है। कोई भी व्यक्ति रस्सी आदि के बिना भी तालाब के जल को पीने तथा स्नान आदि के काम में आसानी से लाता है। भगवान् के अर्चारूप का दर्शन, पूजन, साष्टाङ्ग प्रणाम आदि सबों के लिए सुलभ है। भगवान् के सभी गुणों की मूर्ति अर्चा रूप में है— ***'गुणपूर्तिरर्चावतारे'।*** पूर्वाचार्यों ने अर्चारूप के समझ ही शरणागति की है।

मूर्तिपूजन का विधान सब वेदों एवं शास्त्रों में है। सृष्टि के आदि कर्त्ता मनु ने अयोध्या का निर्माण कराया। ब्रह्मा के समक्ष प्रणवाकार विमान में उपस्थित भगवान् विष्णु शेष शय्या पर लेटे हुए थे। मनुजी ने उन्हें ब्रह्मा से माँगकर अयोध्या में भगवान् विष्णु को लाया।

आऽयोध्या जगतीतले तु मनुना वैकुण्ठतो ह्यानिता,
याचित्वा निजसृष्टिपालन परं वैकुण्ठनाथं प्रभुम्।
या वै भूमिनिधाय सेव्यविमला चेक्ष्वाकवे चार्पिता,
साऽयोध्या परमात्मनो विजयते धाम्नापरा मुक्तिदा।।

(श्रीरामानुजदिग्विजय)

जिनकी उपासना इक्ष्वाकु से श्रीराम तक हुई। श्रीराम ने वैकुण्ठ जाते समय भगवान् रङ्गनाथ विष्णु को विभीषण जी को सेवा के लिए दे दिये। जो अभी भी दोनों कावेरी के बीच में विराज रहे हैं। अत: सृष्टि के आरम्भ से ही भगवान् की मूर्ति का पूजन होता आया है।

श्रीमद्भागवत में भगवान् ने स्वयं कहा है कि मेरी मूर्ति आठ प्रकार की होती है—पत्थर की, लकड़ी की, धातु की, मिट्टी (चन्दन) की लेप्या, चित्रमयी, बालु की, मनोमयी और मणिमयी। एक अचलमूर्ति होती है और दूसरी चलमूर्ति। चलमूर्ति उत्सव आदि में मन्दिर से बाहर निकलती है और अचलमूर्ति नहीं निकलती है। मूर्ति में भगवान् की उपासना सबों को करना चाहिये।

नास्तिक का प्रश्न—क्या मूर्ति में ईश्वर घुसकर बैठा हुआ है जो मूर्ति में ईश्वर का पूजन करते हैं?

उत्तर—आप किसी मनुष्य की फोटो और नोट को सही मानते हैं। फोटो में क्या फोटो वाला मनुष्य घुँसा रहता है? क्या नोट में रुपये घुँसे रहते हैं। व्यापक होने पर भी इसे संसार में फोटो और नोट को प्रतिकृति मानते हैं, वैसे ही ईश्वर की प्रतिकृति मूर्ति है, इसे हमसब मूर्तिपूजा करते हैं। एक मूर्ति में ही नहीं बल्कि सब संसार में ईश्वर व्याप्त है।

प्रश्न—मूर्ति तो मनुष्य की बनायी हुई है?

उत्तर—मनुष्य की बनाई स्याही, मनुष्य का बनाया कागज तथा मनुष्य का किया हुआ टाईप तथा इन सबों से बना हुआ वेद-पुराण, कुरानशरीफ, बाइबिल ये सब जिन मनुष्यों के धर्म ग्रन्थ हैं, उन सबकी उन ग्रन्थों में पूज्य बुद्धि रहती है। वैसे ही मनुष्य की बनाई मूर्ति में भी मूर्तिपूजकों की पूज्य बुद्धि रहती है।

प्रश्न—मूर्ति के पूजने में ईश्वर की प्रसन्नता कैसे होती है?

उत्तर—जैसे शरीर के पूजने से शरीर में रहने वाली आत्मा प्रसन्न होती है। वैसे ही मूर्ति के पूजने से मूर्ति में व्यापक रूप से रहने वाले भगवान् नारायण प्रसन्न होते हैं।

ooo

बनने से ही हिन्दुओं के ऊपर सतत होने वाले अपमान का परिमार्जन होगा। यही अपमान उसे भगवान् का प्राकट्य स्थल होने से मथुरा और काशी में भी सताता है।

४. सन्तों का स्पष्ट मत है कि वह स्थल श्रीराम जन्मभूमि है। जहाँ श्रीरामलला आज भी विराजमान हैं और उनकी निरन्तर पूजा हो रही है। इसी स्थान पर भव्य दिव्य मन्दिर का निर्माण होगा।

५. श्रीराम जन्मभूमि हिन्दू समाज के लिए सम्पत्ति नहीं है। समाज की मान्यता है कि रामलला के समान जन्मभूमि भी देवता हैं और इस रूप में पूज्य है।

६. मन्दिर को जिस प्रारूप के लिए करोड़ों हिन्दूओं ने सवा-सवा रुपया अर्पित किया, करोड़ों घरों में जिसके चित्र लगे हैं, उसी प्रारूप का श्रीराम जन्मभूमि पर मन्दिर बनेगा।

७. श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर के लिये जिन पत्थरों की नक्काशी की गई है और वे अयोध्या कार्यशाला में सुरक्षित हैं, नित्य हजारों लोग जिनके दर्शन करते हैं, उन्हीं पत्थरों से श्रीराम जन्मभूमि मन्दिर का निर्माण होगा।

८. सन्त समाज का कथन है कि अयोध्या की सांस्कृतिक सीमा में किसी मस्जिद का निर्माण नहीं होने देंगे और विदेशी बर्बर आक्रान्ता बाबर के नाम से सारे हिन्दूस्थान में कोई मस्जिद नहीं बनेगी।

गोवंश रक्षण-संवर्धन के लिए सरकार द्वारा करणीय कार्य—

१. गाय को राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर घोषित किया जाए।

२. भारतीय नस्ल की गायों के संरक्षण व संवर्धन हेतु एक अलग से गो-संवर्धन मन्त्रालय, गो-सेवा आयोग स्थापित किया जाए।

३. गोवंश के विकास के लिए भारतीय नस्ल के साँड़ों एवं बैलों की उपयोगिता सुनिश्चित करते हुए इनका भी संरक्षण एवं संवर्धन किया जाए।

४. बैल-आधारित कृषि और उद्योगों को बढ़ावा दिया जाय।

५. गौ-माता के कृत्रिम गर्भाधान को बन्द किया जाय।

६. गोवंश हत्या बन्दी का कठोर कानून बनाकर उसके प्रभावी क्रियान्वयन की व्यवस्था की जाए। गो-मांस निर्यात को बन्द करते हुए समस्त कत्लखानों को प्रतिबन्धित किया जाए।

७. गायों के चरने के लिए गोचर भूमि सुरक्षित रहे, अतिक्रमित गोचर भूमि मुक्त कराकर गोचर 'प्राधिकरण' का निर्माण किया जाए।

८. भारत के अन्नदाता किसानों को आत्महत्या का मार्ग छोड़कर आत्मसम्मान से जीने वाला जीवन बने। इसके लिए रासायनिक खाद कीटनाशकों को प्रतिबन्धित करते हुए गोवंश आधारित जैविक कृषि ग्राम एवं कृषि आधारित ग्रामोद्योग केन्द्र स्थापित किया जाय।

९. जेलों में गोशालाओं का निर्माण हो।

१०. गो आधारित कृषिनीति, आर्थिक नीति, गोग्राम आधारित उद्योगनीति, शिक्षा में गोग्राम, जीवकनीति, गो आधारित स्वास्थ्यनीति अपने राज्यों में लागू किया जाय। सम्पूर्ण समाज को सङ्गठित होकर पूरी शक्ति लगाकर उपरोक्त तीनों कार्यों को सम्पन्न करना होगा, यह युग का आह्वान है।

ooo

बनाया गया मिनरल वाटर कुछ महीनों तक ही पीने योग्य रहता है, बाद में दूषित माना जाता है। यह मिनरल वाटर दूसरे जल को शुद्ध नहीं कर सकता।

उत्तराखण्ड के धाम सङ्कट में—देश की चारों दिशाओं में चार धाम की मान्यता प्राचीन काल से चली आ रही है। इनमें से उत्तर दिशा में बदरीनाथ धाम प्रधान रूप से स्थित है। इसके अतिरिक्त उत्तराखण्ड राज्य में भगवत् प्रदत्त और तीन धाम– गङ्गोत्री, यमुनोत्री तथा केदारनाथ माने जाते हैं।

गङ्गा, यमुना और उनकी सहायक निदयों के कारण ही उत्तराखण्ड में इन चारों धामों का महत्व है। गङ्गा, यमुना के अस्तित्व पर सङ्कट आएगा तो निश्चित रूप से इन देव स्थानों का अस्तित्व भी खतरे में पड़ जाएगा।

उत्तराखण्ड के प्रयाग सङ्कट में—भागीरथी व अलकनन्दा के सङ्गम तट पर स्थित गणेश-प्रयाग तो पहले ही टिहरी बाँध जल विद्युत परियोजना में सदा-सर्वदा के लिए डूब गया है। इसी प्रकार अलकनन्दा पर स्थित पञ्च प्रयोगों को भी समाप्त करने की योजना पर काम चल रहा है। विष्णु-प्रयाग (अलकनन्दा, धोली गङ्गा), नन्दप्रयाग (नन्दा-किनी-अलकनन्दा), कर्णप्रयाग (पिंडर अलकनन्दा), रुद्र-प्रयाग (मन्दाकिनी अलकनन्दा), देव-प्रयाग (भागीरथी-अलकनन्दा) पर भावी जल विद्युत परियोजनाओं में या तो डूब रहे हैं या फिर सूख रहे हैं।

भागीरथी व अन्य नदियों पर बन रही बाँधों की शृङ्खला के कारण नदियों का प्राकृतिक स्वरूप ही लुप्त हो जाएगा। गङ्गोत्री से हरिद्वार तक कहीं भी गङ्गा अब अपने मूल स्वरूप में बहती हुई नहीं दिखेगी। या तो इसे बड़े बाँधों में बाँध दिया जाएगा या फिर सुरङ्ग के भीतर से भूमिगत प्रवाह सम्भव होगा।

****

श्री भाष्यकार द्वारा अवश्य आचरणीय उपदेश

१. पूर्वाचार्यों के उपदेशमय वाक्यों पर विश्वास करके आचरण करना चाहिए।
२. भगवान के मन्दिर, गुरुगृह और श्रीवैष्णव निवासी की ओर पैर पसार कर कभी न तो शयन करे तथा नहीं बैठे।
३. सोने के पूर्व और जागने के पश्चात् गुरु परम्परा का पाठ करे।
४. किसी भी श्रीवैष्णव के आगमन की सूचना मिलने पर उसकी आगवानी करने को जाना चाहिए।
५. भगवान विष्णु के दिव्य मन्दिर, विमान, गोपुर आदि को देखते ही सिर झुकाकर उनको प्रणाम करे।
६. विष्णु पादोदक अथवा किसी भक्त का श्रीपादतीर्थ अथवा शुद्ध पेय जल को अवैष्णव के सामने ग्रहण न करे।
७. तत्त्वत्रय, ब्रह्म, जीव और प्रकृति का रूप रहस्यत्रय, मूलमन्त्र, द्वयमन्त्र और चरममन्त्र का जिसे भली-भाँति ज्ञान नहीं हो ऐसे श्री वैष्णव का श्रीपादतीर्थ कभी न ले।
८. भगवत्सन्निधि में भागवतों के दिये हुए तीर्थ प्रसाद को दास आज उपवास व्रत में हैं कहकर कभी न त्यागे, उसे बड़ी श्रद्धा भक्ति से ले।
९. सर्वपापहारी भगवत्प्रसाद को कभी उच्छिष्ट न समझें।
१०. श्रीवैष्णवों के सामने अपनी प्रशंसा न करे।
११. श्रीवैष्णवों की सन्निधि में किसी का तिरस्कार भी न करे।
१२. २४ घण्टे में कम से कम एक घण्टा तो नित्य अवश्य ही आचार्य का गुणगान करे।
१३. जो पुरुष रात-दिन परनिन्दा किया करता हो उससे कभी बात-चीत न करे।

—०*०—

की जो १५ नवम्बर तक अविराम चलता रहेगा। सन्त-महात्माओं ने राममन्दिर निर्माण के लिए हो रही देरी पर राजनीतिक दलों को जिम्मेदार ठहराया। सन्त-महात्माओं का कहना था कि हिन्दुओं के आस्था का केन्द्र एक षडयन्त्र के द्वारा नष्ट किये जा रहे हैं, गङ्गा तथा राममन्दिर पर सरकार झूठ बोल रही है। उत्तराखण्ड से पधारे एक सन्त ने कहा कि यदि गङ्गा नहीं रही तो हरिद्वार, काशी, प्रयाग तथा गङ्गासागर जैसे तीर्थों का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। गङ्गोत्री के सन्त ने कहा कि राममन्दिर निर्माण के लिए फिर से बड़ा आन्दोलन खड़ा करने की आवश्कता है। सन्त महासम्मेलन का सञ्चालन विश्व हिन्दू परिषद् के धर्माचार्य सम्पर्क प्रमुख जीवेश्वर मिश्र ने किया।

सन्त महासम्मेलन को रामजन्म भूमि न्यास के अध्यक्ष महन्त नृत्यगोपालदास, स्वामी अवधेशानन्द, डॉ० रामकमलदास वेदान्ती काशी, गोविन्ददेव गिरि हरिद्वार, स्वामी श्रीहरेरामाचार्य गया (बिहार), कैवल्यपीठाधीश्वर अविचलदास गुजरात, स्वामी चिन्मयानन्दजी, महामण्डलेश्वर वियोगानन्द जी उत्तराखण्ड, साध्वी ऋतम्भरा, श्रीवैष्णवदास ऋषिकेश, श्रीभक्तिपरायण स्वामी आन्ध्रप्रदेश ने भी सम्बोधित किया। इस अवसर पर विश्व हिन्दू परिषद् के अन्तर्राष्ट्रिय अध्यक्ष श्री अशोक सिंहल, कार्याध्यक्ष श्रीवेदान्तम्, महामन्त्री श्री प्रवीणभाई तोगड़िया, केन्द्रीय मन्त्री राजेन्द्र सिंह पंकज सहित अनेक विशिष्ट सन्त, विचारक तथा सभी अखाड़ों एवं बाड़ाओं के प्रतिनिधि आचार्य व श्रीमहान्त प्रमुख रूप से उपस्थित थे। इस सन्त सम्मेलन में तीर्थ नगरी के प्राय: हर सन्त का आगमन हुआ। जिसनें भी सन्त सम्मेलन के बारे में सुना दौड़ा चला आया। सन्तों की उपस्थिति के कारण विशाल पण्डाल भी छोटा पड़ गया। सम्पूर्ण सन्त समाज गो, गंगा व श्रीराम मन्दिर निर्माण के मुद्दों पर पूरी तरह सङ्कल्प-बद्ध और एकजूट दिखा।

****

महान अपराधी इन्द्र पर भगवान् ने की कृपा

महर्षि दुर्वासा ने किसी विद्याधर की स्त्री से माँगकर एक दिव्य माला प्राप्त की। उसे लेकर दुर्वासा जी स्वर्ग में चले गये। उन्होंने वहाँ देखा कि देवराज इन्द्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर नगर भ्रमण कर रहें हैं। दुर्वासा मुनि ने विद्याधर स्त्री से प्राप्त दिव्यमाला इन्द्र को दे दिया। ऐश्वर्यमदमत इन्द्र ने उस माला का महत्त्व नहीं समझा। अत एव उसने माला को हाथी के सिर पर डाल दिया। हाथी ने सूंड से उस माला को नीचे गिराकर अपने पैर से घिसकर नष्ट कर दिया। दुर्वासा उसे देखकर कुपित हो गये। उन्होंने देवराज इन्द्र को शाप दिया कि तुम्हारा सारा ऐश्वर्य नष्ट हो जायेगा। इन्द्र ऐश्वर्य हीन हो गये। समस्त देवों ने दु:खी होकर भगवान श्रीविष्णु के पास गये। उन्होंने अतिदीन भाव से प्रेम पूर्वक भगवान का स्तवन किया। भगवान समझते थे कि ये देव बड़े स्वार्थी और अहंकारी हैं, फिर भी निर्हेतुकी असीम कृपा से प्रेरित होकर वासुग्निाग से लपेटे हुए मंदराचल पर्वत को मथानी बनाकर समुद्र मन्थन कराया और अमृत निकालकर देवों को पिलाया तथा उनका नष्ट ऐश्वर्य भी उन्हें दे दिया।

भक्त वत्सल भगवान देवताओं के दीन वचन से द्रवित होकर मन्दराचल पर्वत को कच्छप बनकर अपने शरीर पर धारण किये। तदनन्तर समुद्र का मन्थन हुआ। भगवान ने अपने दिव्य मंगल विग्रह को क्लेश देकर देवों का काम पूरा किया। ऐसे हैं परमदयालु भक्त वत्सल भगवान विष्णु।

****

तुमरे भाग राम वन जाही,
दूसरे हेतु तात कुछ नाहीं ।

अर्थात् लक्ष्मण! श्रीराम वन में तुम्हारे भाग्य से जा रहे हैं दूसरा कोई कारण नहीं है। श्रीराम यदि अयोध्या में रह जायेंगे तो यहाँ उनकी सेवा करने वाले बहुत लोग हैं। तुम्हें सेवा का अवसर नहीं मिलेगा और वन में एक तुम ही रहकर सब प्रकार से उनकी सेवा करोगे। सुमित्राजी ने यह भी कहा कि जो सेवा के बाधक राग, द्वेष आदि हैं उन्हें तुम अपने अन्दर न आने देना। श्रीलक्ष्मण श्रीराम के सेवार्थ सदा जगे रहे। चौदह वर्ष तक वन में कभी सोये नहीं। जब लक्ष्मणजी मेघनाद के बाण से मूर्च्छित हो गये तब श्रीराम ने कहा—

सुत बित नारि भवन परिवारा ।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा ।।
अस विचारि जियँ जागहु ताता ।
मिलइ न जगत सहोदर भ्राता ।।

यहाँ सहोदर का अर्थ है–समान हृदयवाला। जगत् में सहोदर भाई बहुत होते हैं; परन्तु लक्ष्मण जैसा समान हृदय (विचार) वाले भाई नहीं मिलते। अत एव श्रीराम ने यह निर्णय लिया कि अगर लक्ष्मण जीवित नहीं होंगे तो मैं लौटकर अयोध्या नहीं जाऊँगा।

अत: लक्ष्मणजी का श्रीराम के प्रति जो सेवा भाव था, वह अवर्णनीय था। उन्होंने भ्रातृसेवा का आदर्श चरित्र स्थापित किया है।

—०००—

भगवद् विरह की बेचैनी से विशुद्ध हो एक गोपी वैकुण्ठधाम गयी

शरत्पूर्णिमा को रात श्रीकृष्ण ने संकेत स्थल पधारकर अपनी दिव्य मुरली बजायी, सभी गोपियाँ उधर आ गयी, परन्तु एक गोपी गुरुजनों से डरती हुई घर से बाहर निकल न सकी। वह अपने कमरे में बैठकर आँख बंद कर श्रीकृष्ण का ध्यान करने लगी। महान योगी की तरह उसकी भी समाधि अवस्था हो गयी। अपने मन से भगवान का परिपूर्ण अनुभव किया और महान आनन्द पाया, जिससे उसका सारा पुण्य नष्ट हो गया। उसके मन में भगवान के साक्षात् दर्शन पाने की इच्छा उत्पन्न हुई, परन्तु वे न मिले, इससे उस गोपी के मन में इतना अधिक दु:ख हुआ कि उससे सारा पाप नष्ट हो गया। इस प्रकार अपने समस्त पुण्य पापों के नष्ट हो जाने पर वह गोपी सर्वथा परिशुद्ध होकर शरीर छोड़कर परम पद चली गयी।

तच्चित्तविमलाह्लाद क्षीण पुण्यचया तदा।
तदप्राप्ति महादु:ख विलीनाशेषपातका।।
चिन्तयन्ती जगत्सूतिं परब्रह्मस्वरूपिणम् ।
निरुच्छ्वासतया मुक्तिं गताऽन्या गोपकन्यका।।

श्रीविष्णुपुराण

पुण्य और पाप का काम है सुख और दु:ख देना। इस गोपी के एक क्षण के मानसिक भगवदनुभव से उसके सारे पुण्य का फल महान आनन्द रूप में मिला और दूसरे क्षण में भगवद्वियोग से सारे पाप का फल महान दु:ख मिला। उससे शीघ्र ही वह अपने कर्मबन्धन से मुक्त हो गयी और वह भगवद्-चरणारविन्द के आश्रित होकर परमानन्द का अनुभव करने लगी।

जो मानव अपने जीवन को आनन्दमय बनाना चाहता हो वह भगवद्गुणों एवं उनका स्वरूप का चिन्तन करने का अभ्यास करे।

****

अपहरण लीला को देखने में हमें विशेष आनन्द मिलेगा।

गोपियाँ श्रीकृष्ण की मधुर एवं शान्त लीला देखती और अनुभव करती थीं। वे रात में दही जमाते समय श्याम-सुन्दर के दिव्य स्वरूप का ध्यान करती हुई यह अभिलाषा करती थी कि मेरा दही सुन्दर जमे, उससे अधिक माखन निकालूँ और उतने ही ऊँचे छीके पर रखूँ जितने पर श्रीकृष्ण का हाथ आसानी से पहुँच सके। श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ आवे और माखन चुराकर खायें और अपने सखाओं एवं वान्दरों को भी खिलावें। हम छिपकर उनको माखन खाते हुए अपनी आँखों देखकर जीवन को सफल बनावें।

एक दिन श्रीयशोदाजी भगवान् श्रीकृष्ण को मेवा, पकवान आदि खाने को दे रही हैं। श्रीकृष्ण ने यशोदा से कहा कि माँ मुझे ये सब अच्छे नहीं लगते। मैं माखन ही प्रेम से खाता हूँ। उस समय व्रज की युवती श्रीकृष्ण की बात को सुन रही थीं। उनके मन में भाव आया कि मेरे घर में श्रीकृष्ण माखन खाते तो मुझे आनन्द मिलता। भगवान् ने व्रज युवती के भाव को समझकर उन्हें आनन्द देने के लिए माखन चुराकर खाने लगे—

प्रथम करी हरि माखन चोरी।
ग्वालिनि मन इच्छा करिपूरन,
आपु भजे व्रज खोरी।।
मन में यह बिचार करत हरि,
व्रज घर-घर सब जाऊँ।।
गोकुल जनम लियौ सुख कारन,
सबकै माखन खाई।।
बालरूप जसुमति मोहि जानैं,
गोपिनि मिलि सुख भोग।
सुरदास प्रभु कहत प्रेम सौं,
ये मेरे व्रज लोग।।
व्रज घर-घर प्रगटी यह बात।
दधि माखन चोरी करि लै हरि,
ग्वाल सखा संग खात।
व्रज-वनिता यह सुनिमन हरषित,
सदन हमारै आवैं।।
माखन खात अचानक पावैं,
भुज भरि उरहिं छुपावैं।
मनहीं मन अभिलाष करति सब
हृदय धरति यह ध्यान।
सुरदास प्रभु कौं घर मे लै,
दैहों माखन खान।।

दक्षिण भारत के आलवार सन्तों ने भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा मक्खन चोरी का रहस्य इस प्रकार प्रकट किया है।

वे भगवान् से कहते हैं कि आपने क्यों मक्खन की चोरी की? क्या वह आपको दुर्लभ था? अर्थात् माँगने पर क्या कोई आपको पर्याप्त मक्खन नहीं देता था? व्रजवासी सभी लोग आपसे बहुत प्यार करते थे। अत: आपको माँगने पर वे नि:सङ्कोच अपना सभी मक्खन आपको दे देते। ऐसा लगता है कि आपको माँगना अच्छा नहीं लगा। माँगकर नवनीत खाने में आपको रस न मिला। चोरी करने से ही अनेक प्रकार की आपकी लीलाये बनीं। इसी प्रकरण में रस्सी में बँधकर आपने अपने परिपूर्ण सौलभ्यगुण प्रकाशित किया है। माखन खाना ब्याज मात्र था। चोरी कर उखल में बँधा जाना ही आपका प्रधान लक्ष्य था।

अहो! समस्त जनता को संहार बन्धन से छुड़ा देने में समर्थ भगवान् ने श्रीकृष्णावतार में मक्खन की चोरी करने पर माता द्वारा रस्सी से उखल में बाँधे गये और उससे अपने को छुड़ाने में आसक्त होकर रोते-रोते थक गये। भगवान् को इस सौलभ्यगुण का आलवारों ने विशेष चिन्तन किया। इसी गुण के कारण भगवान् श्रीकृष्ण सभी गोपियों के लिए सुलभ बन गये। उन्होंने माखन चोरी के बहाने सभी गोपियों का हृदय चुरा लिया—

वक्त्रम्वहन् परम् गोपगृहेषु किं त्वम्।
गोपीमनांसि नवनीतमुताभ्यमोषीः।।

—०००—

सन्तों के महिमामय कार्य

सन्तों ने ऐसी-ऐसी दिव्य लीलाएँ की हैं, जिनके श्रवण, मनन तथा चिन्तन से भी परम कल्याण हो जाता है, लोक-परलोक दोनों बन जाते हैं। ऐसी ही कुछ लीलाएँ यहाँ दी जा रही हैं—

बहुत प्राचीन काल की बात है, ब्रह्माजी के मानसपुत्र मरीचि आदि ऋषि तप का अनुष्ठान किया करते थे और स्वाध्याय, साधन-भजन किया करते थे। उन्हीं दिनों की बात है, अत्रि कुल में अङ्ग नाम के एक बड़े धर्मात्मा राजा हुए, वे अत्रि के समान ही तेजस्वी थे। उनका एक पुत्र हुआ जो वेन नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह धर्म के तत्त्व को तनिक भी नहीं समझता था। उसका जन्म मृत्यु की कन्या सुनीथा के गर्भ से हुआ था। मातृकुल के दोष के कारण अधर्म में ही विशेष रूची थी, वह बड़ा ही लोभी और कामी निकला। उसने धर्म की मर्यादा भङ्ग कर दी और वैदिक धर्म का उल्लङ्घन करने लगा। उसने क्रूर प्रतिज्ञा कर ली थी कि किसी को भी यज्ञ, हवन, पूजा-पाठ, जप-तप साधन एवं भजन आदि नहीं करने दिया जाय। मैं ही भगवान् हूँ, सब लोग मेरी ही पूजा करें।

कुछ दिनों तक ऐसा चला किन्तु भगवान् के विधान में अधर्म की, अन्याय की, अनीति की सत्ता कब तक ठहर सकती है? वेन के आचरण से साधु-सन्त, ऋषि-मुनि सभी प्राणी यहाँ तक कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में हाहाकार मच गया। सभी कष्ट में पड़ गये, धर्म की गति ही रूक गयी। यज्ञों के अभाव में, पितृकर्मों के अभाव में देवता-पितर सभी को कष्ट होने लगा। वेन तो ऐसा चाहता ही था; परन्तु कब तक? अन्त में वात्सलयमय भगवान् से अपनी प्रजा का दु:ख देखा नहीं गया। उन्होंने मरीचि आदि ऋषियों के मन में प्रेरणा की।

उस प्रेरणा से प्रेरित हो मरीचि आदि ऋषि वेन के पास गये और उससे बोले—राजन्! राजा ईश्वर का अंश ही होता है, राजा को तो प्राण देकर भी अपनी प्रजा का पालन करना चाहिये, किन्तु आप इसके सर्वथा विपरीत आचरण कर रहे हैं, आप ऐसा अधर्म ऐसा अत्याचार न करें। किन्तु मोह, अज्ञान तथा अहङ्कार की मूर्ति वेन को महर्षियों की बात अच्छी नहीं लगी, वह क्रोध से तमतमा उठा और महर्षियों की अनेक प्रकार से भर्त्सना करने लगा।

दुराचारी वेन राजसिंहासन के योग्य नहीं था, वह निर्लज साक्षात् यज्ञपति भगवान् विष्णु की निन्दा करता था।

अत: ऋषियों ने विचार किया कि इसे राजसिंहासन से हटा देने में ही कल्याण है। उन लोगों ने अपने हूँकार से वेन को मार डाला। तदनन्तर ऋषि अपने-अपने आश्रमों पर चले गये। पृथ्वी पर अराजकता फैल गई। चोर-डकैत आदि से प्रजा को विशेष हानि होने लगी। एतदर्थ ऋषियों ने मृत राजा वेन की जाँघ को जोर से मथा। उससे एक काले रङ्ग का पुरुष उत्पन्न हुआ। वह छोटे कद का था वह भयभीत हो मुनियों के सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसे व्याकुल देखकर महर्षि अत्रि ने कहा निषीद (बैठ जाओ) उससे उसका नाम निषिद पड़ा। वह निषाद वंश का प्रवर्त्तक हुआ।

तदनन्तर महर्षियों ने पुन: अरणी की भाँति वेन की दाहिनी भुजा का मन्थन किया। उससे अग्नि के समान एक तेजस्वी पुरुष प्रकट हुआ। जो भयङ्कर टङ्कार करने वाले 'आजगव' नामक धनुष, दिव्य बाण तथा कवच-कुण्डल धारण किये हुए था। उसके उत्पन्न होते ही सर्वत्र आनन्द छा गया। क्षणभर में ही यह समाचार सर्वत्र फैल गया। सभी

निष्काम-कर्म रूप उपासना का अपूर्व चमत्कार

केरल प्रदेश के धन्वीपुर गाँव में एक विष्णुचित्त-स्वामी रहते थे। भगवान् विष्णु के कृपाकटाक्ष के कारण वे विष्णुचित्त नाम से प्रसिद्ध हुए थे। उनका चित्त सदा विष्णु में लगा रहता था। वे श्रीविष्वक्सेन स्वामी से वैष्णवी दीक्षा ग्रहण किये थे। एक दिन उन्होंने विचार किया कि श्रीवैष्णवों का स्वरूप है– भवागन् का नित्य कैङ्कर्य करना। वहाँ एक मन्दिर था, जिसमें बटपत्रशायी भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य मङ्गलमयमूर्ति थी। श्रीविष्णुचित्त स्वामी निष्काम भाव से प्रतिदिन सुगन्धित पुष्पों एवं तुलसी की माला बनाकर बटपत्रशायी भगवान् कृष्ण को समर्पित करने लगे। वे सतत तुलसी, फूल लगावें और माला बनाकर भगवान् की सेवा में समर्पित करें। वहाँ से पाँच योजन की दूरी पर मथुरा नाम की एक नगरी थी। वहाँ श्री वल्लभदेव नाम से राजा राज्य करते थे। एक दिन आधी रात में प्रजा की स्थिति को समझने के लिए भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने एक चबूतरे पर अकेले सोये हुए एक ब्राह्मण को देखा। उसे जगाकर राजा ने उसे कल्याण का मार्ग पूछा। ब्राह्मण ने कहा कि वर्षाकाल में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए आठ मास तक सामग्रियों का संग्रह करे। रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत करने के लिए दिन में ही साधन का प्रबन्ध कर ले। वृद्धावस्था में सुख के लिए युवावस्था में द्रव्यादि का संग्रह कर ले और परलोक के लिए जन्म से ही प्रयत्न करना चाहिए। ब्राह्मण का वचन सुनकर राजा ने विचार किया कि संसार के सुख भोग के लिए मेरे पास साधन की कमी नहीं है; परन्तु परलोक के लिए कुछ प्रयास करना चाहिए।

एतदर्थ राजा ने विचार किया कि देवता अनेक हैं उनमें मोक्षप्रद देव कौन हैं यह संशय है। इसके लिए राजा ने अपने पुरोहित से पूछा कि मोक्ष देने वाले कौन देव हैं। पुरोहित ने राजा से कहा कि परदेव का निर्णय वैदिक सिद्धान्त के अनुसार होना चाहिए। एतदर्थ आप विद्वानों की सभा बुलाकर शास्त्रार्थ द्वारा परतत्त्व का निर्णय करायें। राजा ने विद्वानों की सभा का आयोजन किया। परतत्त्व निर्णायक विद्वान् के लिए विशेष पुरस्कार की व्यवस्था भी कर दी गई। मथुरापुरी में विद्वानों की सभा हुई। उनमें अनेक दिनों तक शास्त्रार्थ होता रहा; परन्तु परतत्त्व का निर्णय नहीं हुआ। उससे राजा बहुत दुःखी हुए। राजा को दुःख दूर करने के लिए बटपत्रशायी भगवान् ने श्रीविष्णुचित्त स्वामी को स्वप्न दिया कि आप मथुरापुरी में जाकर यह निर्णय कर दें कि परतत्त्व भगवान् विष्णु ही हैं। श्रीविष्णुचित्त को विशेष वेदशास्त्र का ज्ञान नहीं था; क्योंकि वे सदा तुलसी फूल उपजाकर निष्काम भाव से सेवा करते थे; परन्तु जैसे भगवान् अशिक्षित ध्रुव के गले में शङ्ख का स्पर्श कराकर समस्त शास्त्रों का ज्ञान करा दिये थे वैसे ही स्वप्न में भगवान् का आदेश होते ही उनकी कृपा से श्रीविष्णुचित्त को समस्त वैदिक सिद्धान्त प्रतिपादक प्रमाणों का ज्ञान हो गया।

वे भगवान् के आदेशाानुसार मथुरापुरी की राजसभा में उपस्थित हुए। राजपुरोहित ने उनका सत्कार नहीं किया। उसने अज्ञानवश राजा से कहा कि यह विष्णुचित्त न वेदों को जानता है न इसे गायत्री का ज्ञान है, यह सन्ध्यावन्दन आदि कृत्यों से भी सदा विमुख रहता है। यह उद्यान में रहकर तुलसी पुष्पों की माला बनाकर माली के समान अपना जीवन-यापन करता है। वेदशास्त्र ज्ञान-विहीन यह विष्णुचित्त विद्वद गोष्ठी में यह पूजा के योग्य नहीं है। राजा वल्लभदेव को पुरोहित का वचन अप्रिय लगा। उन्होंने श्रीविष्णुचित्त स्वामी को

गङ्गा : एक राष्ट्रिय अस्मिता

हमारी आस्था के साथ खिलवाड़—गङ्गा नदी कोई सामान्य नदी नहीं, न गङ्गाजल सामान्य जल है। इनके साथ सामान्य नदी या जल जैसा वैज्ञानिक अथवा तकनीकी व्यवहार, आर्थिक विकास या आधुनिकता के नाम पर छेड़छाड़ कदापि स्वीकार नहीं। गङ्गा भारतीय संस्कृति में 'माता' के रूप में और गङ्गाजल 'मुक्तिदाता' के रूप में हमारी आस्था का केन्द्र है। आस्था का स्थान बौद्धिक, वैज्ञानिक तर्कों और आर्थिक हितों से कहीं ऊपर होता है। गङ्गा के जल में हल्कापन है, गति शान्त है, प्रवाह सहज है, जल कभी खराब नहीं होता, न गन्ध आती है, न रङ्ग बदलता है, न कीड़े पड़ते हैं।

गङ्गा की पवित्रता का रहस्य—गङ्गा के इस सहज और सतत् प्रवाह का कारण है हिमालय की ऊँची चोटियाँ, जहाँ तक पहुँचते-पहुँचते बादल, अपना समग्र मल और गन्ध खो बैठते हैं और अति स्वच्छ तथा गन्धहीन होकर हल्के से हल्के रूप में, हिमालय की ऊँची चोटियों पर जमते चले जाते हैं। बर्फ गिरती है, जमती है। हिमालय की चोटियाँ चट्टानों से बनी हैं। जिन पर रगड़ खा-खाकर हिम इन चट्टानों के वैशिष्ट्य को अपने में समेट लेता है। ऊँचाई से हिमनद बन, नीचे बहता है, आस-पास की पहाड़ियों, पेड़-पौधे व वनस्पतियों से खनिजों को, लवणों को, औषधीय गुणों को, उनके प्रभावों को ग्रहण करता है। घर्षण से और भी गुण बटोरता है और वह सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है, जो अशुद्धता को रहने ही नहीं देती।

कैसे बनती है गङ्गा?—भागीरथी और अलक-नन्दा का सम्मिलित नाम गङ्गा है। गङ्गा नदी का मुख्य स्रोत गङ्गोत्री है। जहाँ यह भागीरथी के नाम से जानी जाती है। हिमालय से जाह्नवी नदी निकल कर भागीरथी से गङ्गोत्री के निकट मिलती है। भागीरथी का मुख्य सहायक नदी भिलगंना है जो टिहरी बाँध में भागीरथी से मिल जाती है।

अलकनन्दा बदरीनाथ के ऊपर से निकलती है। जिसमें धौलागिर पर्वत श्रेणियों में स्थित ग्लेशियरों से उद्गमित धौली-गङ्गा विष्णु-प्रयाग में आकर अलक-नन्दा से मिलती है। आगे चलकर पतालगङ्गा, गरुड़गङ्गा इसमें मिलती है। नन्द-प्रयाग में त्रिशूल पर्वत से निकलने वाली मन्दाकिनी अलकनन्दा में समाहित होती है। पिण्डारी ग्लेशियर से आने वाली पिण्डर कर्ण-प्रयाग में आकर अलकनन्दा में समाहित होती है। रुद्र प्रयाग में मन्दाकिनी भी अलकनन्दा में आकर मिल जाती है।

अलकनन्दा और भागीरथी का सङ्गम देवप्रयाग में होता है। उसके आगे यह पुण्य प्रवाह गङ्गा के नाम से ऋषिकेश और हरिद्वार होता हुआ बंगाल की खाड़ी तक जाता है। अपने उद्गम स्थल गौमुख से लेकर बंगाल की खाड़ी तक गङ्गा २५२५ किलोमीटर की यात्रा तय कर गङ्गासागर में अपना अस्तित्व विलीन कर देती है। इस मार्ग में यह प्रवाह लगभग १०० छोटे-बड़े नगरों, महानगरों को अपना सान्निध्य प्रदान करता है। गङ्गा के तट पर लगने वाले मेले इसके स्वरूप को और भी अधिक रमणीय बना देते हैं।

हरिद्वार तक का गङ्गा का प्रवाह, शिखरों की ऊँचाई की धवलता, बर्फ की निर्मलता, चट्टानों की रगड़ की उष्मा, चट्टानों में निहित विभिन्न खनिज तत्त्व जैसे– लौह, ताँबा, चाँदी, मैग्नीशियम, कैल्शियम, सोडियम, पोटेशियम, जिंक, कोबाल्ट आदि के साथ गन्धक और पहाड़ियों पर पटी पड़ी औषधियों की गुणवत्ता अपने में समेटता है। पर्वतीय प्रवाह और कङ्कडों का जमावड़ा धारा के साथ-साथ और जल से खिलवाड़ करता पत्थरों तथा कङ्कड़ों का बहाव जल को कहीं गन्दा नहीं होने देता। यह जल त्वचा के लिए, पेट के लिए, स्फूर्ति के लिए, अस्थियों के लिए, मन और मस्तिष्क के लिए, हृदय और आत्मा के लिए अति लाभप्रद है। यह जल नहीं, अमृत है। स्वयं के शुद्धिकरण की यह प्रक्रिया गङ्गा-प्रवाह में सतत चलती रहती है। यदि मनुष्य के हाथ इस प्रवाह में हस्तक्षेप न करे तो गङ्गा में आत्मशुद्धि का गुण सदैव बना रहेगा।

०००

इसलिए ऐसी वस्तुएँ बीच में दे दी जाती हैं, जिनमें होकर बिजली के आकर्षण का प्रभाव ही न पड़ सके। साथ ही सूर्यमण्डल के द्वारा उसका आकर्षण न हो जाय, इसलिए आवृत्त स्थान का आग्रह किया जाता है, जहाँ कि सूर्य का आकर्षण बहुत मन्द गति से होता है। अब इन नियमों का कोई परिवर्तन करना चाहे, तो वह तभी हो सकता है, जब पृथिवी या सूर्य में से आकर्षण शक्ति में भी विद्युत की शक्ति प्रवाहित करने की योग्यता समाप्त कर दी जाय। ऐसा परिवर्तन यदि मनुष्य शक्ति के बाहर है, तो इन नियमों का परिवर्तन भी मनुष्य के द्वारा कैसे किया जा सकता है? गोमय की उपलेपन की भी यही स्थिति है। उसकी भी वैज्ञानिक परीक्षण हो चुकी है। दूसरा उदाहरण भी देखिए। पूजा आदि प्रत्येक कार्य को आरम्भ करने से पहले हमारे यहाँ आचमन करने का नियम है। इस अवसर पर 'शतपथब्राह्मण' के आरम्भ में ही प्रश्न उठाया गया है कि यज्ञ-कर्म के आरम्भ में आचमन क्यों किया जाय? दो कारण बतलाकर वहाँ इसका उत्तर दिया है। जल का स्वभाव है कि वह मलिनता को धो देता है और दो वस्तुओं को आपस में संयुक्त कर देता है या यों कहिए कि एक प्रकार का चेप उत्पन्न कर देता है, इसलिए जल को पवित्र और मेध्य कहा जाता है। पवित्र शब्द का अर्थ है–'शोधन करने वाला' और मेध्य शब्द का अर्थ है–परस्पर योग की शक्ति पैदा करने वाला'।

यहाँ दोनों ही शक्तियों की आवश्यकता है। मनुष्य समय-समय पर झूठ बोल देता है, इसलिए उसके अन्त:करण में मलिनता आ जाती है। मन, वाणी और कर्म का एक क्रम में रहना ही शुद्धता है। झूठ बोलने से यह क्रम बिगड़ जाता है; क्योंकि मन में कुछ और ही है, वाणी से कुछ और ही निकलता है और क्रिया कुछ और ही होती है। इन तीनों का क्रम बिगड़ना ही एक प्रकार का मैल है। इसलिए झूठ बोलने से अन्त:करण में मलिनता आ जाती है। इस मलिनता को धो डालने की आवश्यकता है और यज्ञ, पूजा आदि के द्वारा जो नये संस्कार उत्पन्न करने हैं, वे अन्त:करण में दृढ़ता से चिपक जाय, इसकी भी आवश्यकता है, इसलिए आचमन सब कर्मों के आरम्भ में आवश्यक माना जाता है। इसका यह अर्थ नहीं कि कोई भी बुरा काम करके हम जल पी लिया करें, तो वह पाप की मलिनता हमारी दूर हो जायेगी।

बुद्धिपूर्वक जो काम किया जाएगा, उसका संस्कार तो बुद्धि में दृढ़ता से बैठेगा। वह केवल जल से दूर नहीं हो सकता। उसके लिए तो प्रायश्चित्त स्वरूप विस्तृत कर्म करने की आवश्यकता होती है। आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान केवल वस्तु-शक्ति का दिग्दर्शन करा सकती है। जल पीने से मन की उथल-पुथल दूर होकर शान्ति प्राप्त होना अनुभव सिद्ध है और सबसे मल के प्रधान उत्पादक क्रोध की शान्ति तो जल से तुरन्त होती है।

वाक् और मन की शक्ति में अभी उसका प्रवेश नहीं। इसलिए हमारे धार्मिक नियमों का आंशिक समर्थन ही विज्ञान के द्वारा हो सका है। संस्कार आदि की प्रत्येक क्रिया हमारे यहाँ वाक्-शक्ति, मन:शक्ति और वस्तुशक्ति–तीनों पर अवलम्बित है, इसलिए आधुनिक विज्ञान में धार्मिक नियमों का समर्थन हो जाता है। हमारा विज्ञान तो तीनों शक्तियों को मिलाकर ही चलती है। मन, प्राण और वाक्–तीनों मिलकर ही आत्मा के सहचर हैं। इसलिए तीनों की ही प्रवणता धार्मिक कार्यों में आवश्यकता है। इसी गम्भीर विज्ञान के आधार पर धार्मिक नियमों का पूरा समर्थन होता है और इस विज्ञान का अभाव होने के कारण ही आजकल प्रत्येक बात में मनुष्यों को शङ्का होती है। शङ्का निराकरण का एक ही उपाय है कि भारतीय विज्ञान का मनन हो, उसका प्रसार हो, इसकी परिभाषाएँ समझी जायँ, तब फिर शङ्का का कोई स्थान नहीं रह जाएगा। हमारे दर्शन-शास्त्रों का विज्ञान इसी प्रकार का है, जिसमें मन, वाक् और वस्तु, तीनों की शक्तियों का सम्मिश्रण है। उस विज्ञान से धर्म का अटूट सम्बन्ध है और इस सम्बन्ध को जानकर ही सब शङ्काएँ दूर हो सकती हैं।

—०००—

मेघनाद की सपत्नीक मुक्ति

(आध्यात्म रामायण के अनुसार)

ब्रह्मा ने मेघनाद को वर दिया था कि जो बारह वर्षों तक आहार और निद्रा का परित्याग किया हो उसी से तुम्हारी मृत्यु होगी।

यस्तु द्वादशवर्षाणि निद्राहारनिवर्जितः ।
तेनैव मृत्युर्निर्दिष्टो ब्रह्मणाऽस्य दुरात्मनः ।।

श्रीलक्ष्मण जी भगवान् श्रीराम की सेवा में अयोध्या से वन में गये थे। उन्होंने वन में श्रीराम की सेवा में रहते हुए किसी प्रकार का आहार ग्रहण नहीं किया था और न कभी सोये ही थे। इसलिए मेघनाद के वध का भार विभीषण के कहने पर भगवान् श्रीराम ने लक्ष्मण को दिया। वे सुग्रीव की वानरी सेना हनुमान आदि के साथ मेघनाद के होम स्थल पर गये और युद्ध आरम्भ कर दिये। होम स्थल की सुरक्षा के लिए मेघनाद ने जो सुदृढ़ घेरा लगाया था उसे हनुमान जी ने तोड़ डाला था। लक्ष्मण जी ने अपने बाणों से इन्द्रजित के बाण सहित दक्षिण हाथ काटकर उसी के घर में गिरा दिया। तत्पश्चात् इन्द्रजित वायें हाथ में त्रिशूल लेकर लक्ष्मण जी को मारने के लिए दौड़ा। लक्ष्मण जी ने अपने बाण से मेघनाद के त्रिशूल सहित उसके वायें हाथ को काटकर रावण के पास भेज दिया। इस कार्य से लङ्का में आश्चर्य हुआ। फिर मुख फाड़कर मेघनाद लक्ष्मण की ओर झपटा। लक्ष्मण ने श्रीराम का ध्यान करके राम-नाम अङ्कित दिव्य बाण से मेघनाद के सिर को काटकर धरती पर गिरा दिया। उस कार्य से बहुत प्रसन्न होकर देवताओं ने लक्ष्मण की स्तुति की। हनुमान जी मेघनाद के सिर लेकर लक्ष्मण सहित श्रीराम के पास गये। घायल होने के कारण लक्ष्मण जी अङ्गद के कन्धे पर चढ़कर गये थे। लक्ष्मण ने श्रीराम को प्रणाम करके मेघनाद का सिर उन्हें दिखलाया। भगवान् श्रीराम लक्ष्मण को हृदय से लगाकर बहुत आनन्दित हुए। रावण ने पहले मेघनाद का कटा हुआ बायाँ हाथ देखा। तत्पश्चात् उन्होंने मेघनाद की मृत्यु का समाचार सुना। पुत्र-वियोग-जन्य शोक से रावण मूर्च्छित हो गया।

सुलोचना अपने पति मेघनाद का बाणयुक्त हाथ को कटा हुआ देखकर उसके पुरुषार्थ का स्मरण करती हुई विलाप करने लगी। तदनन्तर मेघनाद ने कटा हुआ हाथ से बाण द्वारा अपने खून से जमीन पर लिखकर कहा—भामिनि! तुम दुःखी न होओ। मैं साक्षात् शेषावतार लक्ष्मण के बाण से मरकर मुक्त हो गया हूँ। अब तुम श्रीराम के पास जाकर मेरा सिर माँग लो। वे अवश्य मेरा सिर तुम्हें दे देंगे। उसे लेकर तुम अग्नि में प्रवेश करके मेरी अनुगामिनी बनो। सुलोचना रक्त से लिखे अक्षरों को पढ़कर बहुत प्रसन्न हुई। तत्पश्चात् वह रावण और मन्दोदरी से आज्ञा लेकर पालकी में बैठी और श्रीराम के पास गयी। उसने श्रीराम के चरणों में प्रणाम करके अपने पति मेघनाद के सिर प्राप्त करने के लिए प्रार्थना की।

श्रीराम ने सुलोचना से कहा—मैं तुम्हारे पति को जीवित कर देता हूँ। तुम अग्नि में प्रवेश करने का विचार छोड़ दो। सुलोचना ने भगवान् से कहा—प्रभो! मोक्षप्रद लक्ष्मण के हाथ से मेरे पति की मृत्यु कहाँ प्राप्त होगी? अतः अब आप उन्हें जीवित न करें। तदनन्तर सुलोचना श्रीराम के चरणों में प्रणाम करके सुग्रीव की आज्ञा से प्राप्त पति का सिर लेकर लङ्का में लौट गयी। उसने अपने पति के शरीर से अपने सिर को मिलाकर उसके साथ चिता की आग में जलकर सती हो गयी। तत्पश्चात् वह दिव्य शरीर धारण कर पति के साथ वैकुण्ठ चली गयी।

—०००—

ही भेद हैं—

नायं देवो न मर्त्यो वा न तिर्यक् स्थावरोऽपि वा ।
ज्ञानानन्दमयस्त्वात्मा शेषो हि परमात्मनः ।।

यह आत्मा न देवता है, न मनुष्य है, न तिर्यक् (पशु-पक्षी) है और न स्थावर है। वह तो ज्ञानस्वरूप और आनन्दमय है और परमात्मा का शेष है। अत एव श्रीभाष्यकार श्रीस्वामी रामानुजाचार्य जी महाराज 'वेदार्थ-संग्रह' में जीव स्वरूप वर्णन प्रसङ्ग में लिखते हैं कि जीवात्मा, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्रकृति के परिमाण रूप शरीर विशेष से रहित हैं। ज्ञानानन्द रूप हैं। कर्मानुसार प्राप्त देव-मनुष्यादि शरीर के नष्ट होने पर (शरीर-सम्बन्ध छूटने पर) जीवात्मा का स्वरूप भेद वाणी से वर्णनीय नहीं होता। स्व संवेद्य है, ज्ञान स्वरूप है इतना ही कहा जा सकता है।

कुछ लोग जीवात्मा को ब्रह्मस्वरूप मानकर उसके समान ही विभु बतलाते हैं; परन्तु श्रुति से ऐसा सिद्ध नहीं होता है। ***'अणुरेषात्मा' बालाग्रशत भागस्य शतधा कतिपयस्य च'*** इत्यादि मन्त्रों से जीवात्मा अणु सिद्ध होता है। ***'नित्योनित्यानाम्' 'क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः'*** आदि श्रुति वाक्यों से जीव का नित्यत्व भी स्पष्ट ही है। अत एव अग्नि, जल, वायु तथा अस्त्र-शस्त्रों से जीवात्मा विकृत नहीं होता है। जीव को कर्मानुसार नूतन शरीर में प्रवेश करने पर जन्म लेना कहते हैं और पूर्व शरीर का त्याग मृत्यु कहलाती है। चूँकि जीवात्मा नित्य होने से जन्म-मरण विकार से रहित है। प्रकृति से सम्बन्ध होने के कारण ही जन्म-मृत्यु का व्यवहार जीव में होता है। जीवात्मा नित्य, मुक्त और बद्ध भेद से तीन प्रकार का है। जिन्हें कर्मकृत संसार का अनुभव कभी न हुआ है, जो सदा त्रिपादविभूति में श्रीभगवान् के पास विराजमान रहते हैं, वे नित्य हैं। जैसे–शेषजी, विष्वक्सेनजी आदि।

जो संसार के बन्धन से छूटकर भगवल्लोक को चले गये वे मुक्त हैं। जैसे–शुकदेव, वामदेव आदि। ब्रह्मा से लेकर कीटाणु पर्यन्त चौरासी लाख प्रकार के शरीर में रहने वाले जितने जीव हैं सब बद्ध हैं। कर्मानुसार उच्च-नीच योनियों में भ्रमण कर रहे हैं।

—ooo—

वेध-विचार

भवन के पूर्व दिशा में पीपल का वृक्ष अशुभ तथा पश्चिम दिशा में शुभ होता है। वट पश्चिम में अशुभ और पूर्व में शुभ है। गूलर उत्तर में अशुभ तथा दक्षिण में शुभ है। पाकड़ का वृक्ष दक्षिण में अशुभ तथा उत्तर में शुभ होता है। घर के पास काँटेदार बेर आदि के वृक्ष रहने पर दुःख, भय होता है। दूधवाले मदार आदि के रहने से धननाश व फल वाले-आम, केला आदि के रहने से वंश-नाश होता है। यदि ऐसे वृक्ष मकान के पास हो तो उन्हें काट दे। यदि न काट सके तो भवन और उन वृक्षों के मध्य में मौलसिरी, शमी, अशोक, कटहल के वृक्ष लगा देने पर वृक्षवेध-दोष निराकृत हो जाता है। जिसके भवन में कदम्ब, केला, बिजौरा, नींबू के वृक्ष रहते हैं, उसका वंश समाप्तप्राय हो जाता है। श्वेत पुष्प के वृक्ष भी घर में नहीं लगाना चाहिए। ताड़ का वृक्ष अशुभ होता है और उसकी लकड़ी भी भवन में लगाने के सम्बन्ध में कहीं-कहीं निषेध-वचन मिलते हैं।

वृक्ष, कूप और कल(चापाकल) आदि द्वार के सामने नहीं रहना चाहिए। मकान चन्द्रवेध होना चाहिए। उत्तर-दक्षिण लम्बा मकान चन्द्रवेध होता है। पूरब-पश्चिम का लम्बा मकान सूर्यवेध होता है। सूर्यवेध मकान हानिकारक होता है। —ooo—